हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श

वैशाली राजेंद्र मोहिते
Email - vaishalinan@gmail.com
Mobile No.9604527600

सारांश

आदिवासी जो भारतीय के मूलनिवासी, उनके प्रति होने वाला शोषण को रोकना । प्रशासन द्वारा आर्थिक उदारीकरण और बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा उनकी जल, जंगल, जमीन से बेदखल करना तथा साहूकारों ,महाजनों, सूदखोरो की अन्याय-अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाना चाहिए| उनकी संस्कृति, सभ्यता ,विरासत को जतन तथा संवर्धित करना हमारा कर्तव्य है। आदिवासी समाज की समस्याएं- शिक्षा, अंधविश्वास, पाखंडवाद, बेरोजगारी ,भुखमरी आदि को सुलझाना जरूरी है| उनका धर्म, भाषा ,सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखना और उनके अस्तित्व को प्रमाणित करना महत्वपूर्ण बन गया है। इसलिए आदिवासियों ने अपनी लड़ाई खुद लडी है और लेखन की दिशा में भी पहल भी की हैं। आदिवासियों का कला ,साहित्य जो मौखिक रूप में था ,उसकी दुर्लभ विरासत को सुरक्षित करना है। आदिवासियों का पलायन और विस्थापन जैसी समस्या पर विचार विमर्श करना आवश्यक है ।आंचलिक भाषाओं में आदिवासी जीवन की विभिन्न पक्षों पर विचार विशेष रूप से किया जाना चाहिए। आदिवासी समाज अन्य समाज से विकास के तौर पर कोसों दूर है। इस अंतर को मिटाना चाहिए। उन्हें मुख्यधारा में प्रवाहित होने के लिए प्रयासरत रहना चाहिए।

सरकार की तमाम नीतियां और बड़े-बड़े दावों वादों के बावजूद भी उनके जीवन में कोई सकारात्मक सुधार देखने को नहीं मिलता है। उनके जीवन तथा उनके अस्तित्व का संकट अचानक उत्पन्न ना हुआ और ना ही समाप्त होने वाला है। आदिवासी विमर्श का महत्वपूर्ण कार्य आदिवासियों के प्रति संवेदनशीलता पर लोकतांत्रिक लाभ लेने में समर्थ बनाना है।

बीज शब्द –

आदिवासी ,संस्कृति, सभ्यता ,अस्तित्व, संघर्ष ,अधिकार, साहित्य।

प्रस्तावना :

21 वे शतक में इस आदिवासी साहित्य ने अपनी ओर विश्व का ध्यान खींचा है। अपने अस्तित्व के प्रति जागृत होने से उनके सबलीकरण पर चर्चा होने लगी। स्त्री विमर्श ,दलित विमर्श के साथ आदिवासी की भी सराहना हुई। आदिवासी लेखन साहित्य , विचारधारा ,रूढी,परंपरा का अध्ययन से ही जानकारी प्राप्त होगी। आदिवासी साहित्य का इतिहास मौखिक है, भाषा का लिपि का विकास नहीं हुआ है। इसी कारण दुनिया के सामने आने में बहुत देर लगी।

आदिवासी यह आदिम युग की जनजाति है, जो अपनी संस्कृति और सभ्यता को युगों से संजोए रखे हुए हैं। वास्तव में राष्ट्र की सभ्यता के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है । भारतीय संस्कृति के संवाहक है ,विरासत के उत्तराधिकारी है । यह समाज मुख्यधारा से अलग होने के बावजूद भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

आदिवासी विमर्श के उद्देश्य :

1.आदिवासी पर अन्याय करनेवाला शोषक वर्ग के बीच हो रहा संघर्ष का अध्ययन करना।
2.आदिवासी अस्मिता, संस्कृति, सभ्यता का संवर्धन जतन करना।
3.आदिवासियों के अस्तित्व को बरकरार रखते हुए उन्हें सम्मान पूर्वक जीने का अधिकार देना।
4.आदिवासियों की समस्याओं हल निकाल कर लोकशाही शासन तथा
राष्ट्र निर्माण में उनका योगदान लेना।

आदिवासी जो भारत का मूल निवासी है ।उसकी जनसंख्या 8.6 प्रतिशत (10 करोड़)से ज्यादा है ।भारतीय संविधान में आदिवासियों के लिए अनुसूचित जनजाति का पद दिया है। भारत में आंध्र, खरवार ,मुंडा, हरिया भील ,कोली, सहारिया, संथाल, भूमि पूरा, लोहारा, बिरहोर, पारधी, असुर, नायक इसी तरह बहुत सी जनजाति है।

चंदा समिति में 1960 में अनुसूचित जातियों को शामिल करने के मानक निर्धारित किए हैं ।

1.भौगोलिक एकाकीपन
2. आज आदिम जनजाति के लक्षण
3. विशिष्ट संस्कृति की पिछड़ापन
4.संकुचित स्वभाव

आदिवासियों से संबंधित पारंपरिक अधिकारों पर अतिक्रमण शुरू हुआ और संघर्ष होने लगा ।आदिवासियों के सक्षम अस्तित्व -अस्मिता के अनेक विकराल प्रश्न उजागर हुए। परिणाम स्वरुप उनकी सांस्कृतिक पहचान और अस्तित्व दोनों पर गहरी चोट लगी।

आदिवासी जनजातियां भारत के आधुनिक रूप से प्रगतिवादी समाज से मुख्यधारा से कटे हुए हैं ।यह अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ते आ रहे हैं ।लेकिन उनके अस्तित्व के अधिकार के साथ जीने का अधिकार छीन लिया है ।आदिवासी साहित्यकार के पास संसाधनों का अभाव है। अच्छा ,सरल, सहज, विश्वसनीय लिखने वाला लेखक आगे नहीं बढ़ पाता क्योंकि उसका लेखन संपादक की ओर से उपेक्षित रह गया है ।उसके पास देने के लिए कुछ नहीं है ।आदिवासी केंद्रीय पत्र पत्रिकाएं भी मर्यादित है ।तमाम विडंबना की बावजूद भी आदिवासी जनजीवन साहित्य कला संस्कृति हमारे राष्ट्र की मूल धरोहर है।

आदिवासी समाज अंधविश्वास, जड़ता, रूढ़िवादी परंपरा से पूर्ण है। इन्हें एकांत एवं प्रकृति से विशेष प्रेम है ।उनका जीवन अभावग्रस्त रहा है क्योंकि यह समाज अन्य समाज से दूर पहाड़ों में,, दूरदराज के इलाकों में आधुनिक सुविधा से दूर दमन और शोषण से ग्रसित है ।सदियों से ही मुख्यधारा से कटा रहा ,दूरी बनी। इसतरह उनकी लोक कला, साहित्य सदियों से मौखिक रूप में रहा ।इसी कारण भाषा की लिपि का विकास नहीं हुआ ।साहित्य जगत में आदिवासी रचनाकार, उनका साहित्य तुलना में कम है। और उनकी रचनाओं में एक प्रकार की कलात्मकता कम होने के कारण आलोचकों को निराश भी करता था ।फिर भी वह आदिवासी जीवन के व्यापक समाज को परिचित कराने का कार्य करता है।

आदिवासियों का समाज कृषकों का समाज है। कृषि और अन्य उत्पादकों के सहारे प्रकृति और उसके सहयोग से जीवन जीने की कला इन आदिवासियों ने आत्मसात कर रखी है ।यही कारण है कि आदिवासियों के अस्तित्व के लिए जल ,जंगल और जमीन का होना आवश्यक है।

भारत की आजादी के बाद आदिवासी सहायता के लिए जयपाल सिंह मुंडा के नेतृत्व में भारतीय राजनीति से लेकर साहित्य तक आदिवासी चेतना के स्वर सुनाई देते हैं ।उसके बाद आदिवासी लेखन को साहित्य के विकास क्रम में आगे बढ़ना हैं |

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग द्वारा "भारतीय साहित्य और आदिवासी विमर्श" इस विषय को लेकर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन डॉ. संजय राठौर जी ने किया। इसमें प्रसिद्ध लेखकों ने अपने विचार उपस्थित किए ।आदिवासी समाज ,इतिहास, संस्कृति, कला ,भाषा पर मौलिक विचार विनिमय हुआ। उनकी दशा और दिशा को लेकर एक नया अनुभव पर सफलतापूर्वक परिचर्चा हुई। जिसमें आदिवासी अपने अस्तित्व -अस्मिता को गहराई से अभिव्यक्त करते हैं।

रांची घोषणा पत्र में आदिवासियों के मूल तत्व को उजागर किया गया।

आदिवासी साहित्य की धारणा-

आदिवासी साहित्य के अध्येता प्रोफेसर वीर भारत तलवार जी ने आदिवासी साहित्य को चार श्रेणियों में रखा है ।

1.सुन कर लिखने वाले
2. जानकर लिखने वाले
3. साथ रहकर लिखने वाले
4.स्वयं आदिवासियों ने लिखा साहित्य

चौथी अति महत्वपूर्ण श्रेणी है ,इसमें आदिवासियों द्वारा अपनी मूल भाषा में लिखा गया साहित्य ,हिंदी -बंगाली आदि प्रादेशिक भाषाओं में लिखा गया साहित्य है। इसकी गुणवत्ता अलग किस्म की होती है। यहां आदिवासियों के जीवन और समाज के चित्र मिलते हैं ।यह साहित्य प्रामाणिक आदिवासी साहित्य है। पहले तीन श्रेणियों का साहित्य आदिवासियों के साहित्य के संबंधित हैं।

आदिवासी साहित्य विमर्श -

आदिवासी आंदोलन का मूल उद्देश्य अकादमी जगत मे अपना अलग आदिवासी दर्शन एवं मूल तत्वों की पहचान बनाना है। आदिवासी साहित्य का अभी प्रारंभिक दौर चल रहा है ।विशेषता प्रादेशिक भाषा में लिखित साहित्य के अनुवाद के माध्यम से आदिवासी को प्रचारित और प्रसारित करने का महत्वपूर्ण योगदान दिया है ।आदिवासी एवं गैर आदिवासी लेखकों द्वारा साहित्य में आदिवासी जीवन का अनुभव, विषय के अनुरूप भाषा का मुहावरा, विनाश, मानवता के सुख-दुख, शोषण ,विस्थापन के संदर्भ में आए हैं। इसलिए भविष्य में आदिवासी साहित्य का कैनवास बहुत ही विस्तृत होगा ।समृद्ध साहित्य की सृजना होने वाली है।

काव्यगत सौंदर्य:

आदिवासियों द्वारा लिखी गई कविताओं में उनकी जीवन और संस्कृति के साथ प्रचलित है। प्राचीन ग्रंथों से संपृक्त रहने के कारण अलग है ।उनका प्रकृति से गहरा रिश्ता है ।उनकी कविता में प्रसंग अनायास उभरते हैं ।आदिवासी कविता जिस जमीन

को तैयार करती है, वह समाज और साहित्य के विविध पहलुओं को सिद्ध करती है। जिसमें उनकी आंचलिक आत्मीयता, समाजवाद का एहसास दिखाई देता है।

निर्मला पुतुल की "नगाड़े की तरह बजते शब्द" रामदयाल मुंडा का "नदी और उसके संबंधी अन्य गीत" "वापसी" "पुनर्मिलन", महादेव की कविताएं आदि अपने प्रति चरित्र और घटनाओं की विशिष्ट पहचान बनाने में सफल रहे। विस्थापन के कारण परंपरागत खेलों से लेकर आदिवासियों की लोक कला विलुप्त हो रही है ।

रमणिका गुप्ता कहती है, "आदिवासियों को मुक्त कराने का साधन साहित्य है ।"

आदिवासी गद्य सौंदर्य-

आदिवासियों का साहित्य मौखिक रहा है ।1980 के बाद आदिवासी और गैर आदिवासी लेखकों में उनकी संस्कृति ,जीवन शैली सरकार - उद्योगपति द्वारा शोषण आदि का चित्रण दिखाई देता है। उनके अपने प्रतीक ,बिंबो ,मिथकों का प्रयोग किया गया है। उनके जिंदगी पर आए आक्रमण ने उन्हें बेचैन कर दिया है | चंदा मीना कहते हैं ,"आदिवासी समाज को बहुत कम लोग जानते हैं क्योंकि लोग उतना ही जानेंगे जितना उनका लिखा गया है ।हिंदी साहित्य में बहुत से विमर्श की तुलना में आदिवासी विमर्श की गूंज कम दिखाई पड़ते हैं।"

उपन्यास:

सबसे पहले फणीश्वर नाथ रेणू जी का उपन्यास "मैला आंचल" में जमीन से बेदखल संतालोंका अपने स्वत्व और अधिकारों के लिए संघर्ष चित्रित हुआ। इसमें अपराधी चेतना और उनका यथार्थवादी आग्रह दिखाई देता है ।बाद में भी बहुत आदिवासी रचनाएं आई। महाश्वेता देवी जी का उपन्यास "हजार चौरासी की मां" एक सशक्त और प्रभावी उपन्यास रहा। विद्रोह चेतना को अभिव्यक्त देने वाला बिरसा मुंडा आदिवासी महानायक साहित्य हिंदी साहित्य को परिचित हुआ।1980 के बाद वाल्टर भेंगरा की "सुबह की शाम" उपन्यास में इस फोटो को उजागर किया।पिटर पाल के उपन्यास "जंगल के गीत" की चर्चा अधिक हुई। रमणिका गुप्ता का का "सीतामौसी" से लेकर के उपन्यास "धोनी तपे तीर" की चर्चा बहुत हुई और उन्हें बिहारी सम्मान से नवाजा गया।

कहानी :

आदिवासी लेखक जो सरल, सहज ,प्रामाणिक लिखने वाले लेखक चर्चा में नहीं आए ।वे विभिन्न पत्रिकाओं की फाइलों में दबे पड़े। कई कहानी संग्रह प्रकाशित हुए, लेकिन चर्चा में नहीं आए। आदिवासी समाज का बिल्कुल सही एवं पारदर्शी रूप देखने को मिलता है। "उस रास्ते में "यह महत्वपूर्ण कहानी है, जिसकी तुलना "उसने कहा था"से की जा सकती है ।बड़ी शोकांतिका यह है कि आदिवासी साहित्य पर विद्वानों पाठकों का ध्यान ही नहीं जा पाया। उनकी समस्याओं का चित्रण प्रतिबिंब के रूप में उजागर किया, जो हमें बहुत ही बेचैन करता है। यथार्थ चित्रण कहानियों में दिखाई पड़ता है क्योंकि कहानी समाज का प्रतिबिंब होती है।

निष्कर्ष:

आदिवासी वर्ग हमारे भारत का अभिन्न अंग है ।उसके उत्थान के लिए सरकार तथा अन्य समाज ने सम्मान के साथ उन्हें जीवन जीने में मदद करनी होगी। प्रकृति और अपने संबंध पूर्व पुरखों का ज्ञान, विज्ञान, कला, कौशल ,बेहतरीन इंसानियत के प्रति संवेदनशील रहना पड़ेगा ।अपनी धरती को संसाधन बनाने के बजाय सभी का आग्रह के साथ वसुधैवकुटुंबकम् की भावना को पुरस्कृत करना जरूरी है।

संदर्भ :

प्रोफेसर वीर भारत तलवार - तद्भव
वंदना टेटे - आदिवासी दर्शन और साहित्य
झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति अखाड़ा
गंगा सहाय मीणा - आदिवासी साहित्य विमर्श
आदिवासी साहित्य
रमणिका गुप्त - युद्ध रत आदमी
आदिवासी स्वर योग और नए शताब्दी